साथिन रो कागद

राज्य इदारा, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'साथिन रो कागद' बहुत पसंद आया। हमने सोचा कि इस कागद की बात औरों तक पहुंचाएं। कागद में उठाए सवालों पर सभी बहनें चर्चा करें। अगर आपके यहां कुछ बदला है तो हमें लिखें। हम आपके अनुभव छापेंगे।

राज्य इदारा, जयपुर को हमारा धन्यवाद।

संपादिका

प्यारी साथणियां,

ये दिन हमारा है। लुगाइयों का अपना दिन। कई सालों से हम इसे मनाते आये हैं। लुगाइयों की पहचान और सम्मान की बात अब गांव के लोगों तक भी पहुंची है। वे सब भी इन सवालों पर सोचने लगे हैं। हमें इस से ताकत मिली है।

हमारी बेटियां जो कल लुगाइयां बनेंगी, क्या हमने उनके बारे में भी कुछ सोचा है?
हम उन्हें कैसा बचपन देना चाहते हैं?
क्या वही जो कभी हमें मिला?
या हमारे मन में उस से कुछ अलग तस्वीर है?
कैसा था हमारा बचपन?
क्या हमारी साथिन संतोष की तरह—

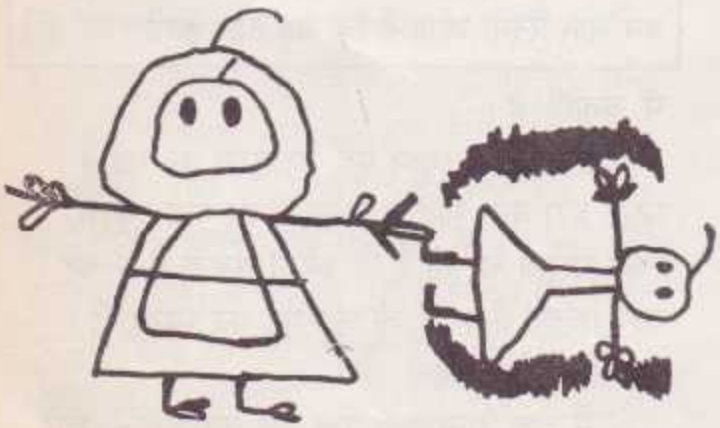

"मां बताती है, मेरी बड़ी बहन हुई तो मां की पूरी देख-भाल हुई। मैं हुई तो मां को ना तो घी दिया और ना ही दूध। दादी भी मेरा ध्यान नहीं रखती, मैं रोती तो वो मुझ पर गूदड़े डाल देती ताकि मेरे रोने की आवाज़ ना आये। मां जब चक्की पीस कर आती तब उसे मालूम पड़ता। वो गूदड़े हटा कर मुझे दूध पिलाती। मैं थोड़ा समझने लगी थी। पढ़ने के लिए कहती तो बापू भी मुझे मना करते। मुझे बुरा कहते। उस समय तो मैं अपना गुस्सा दबा जाती, लेकिन जब कोई छोरा-छोरी स्कूल जाते दीखते तो मन जलता। मैं उन से बस्ता छीन लेती, लड़ती और कई बार रो भी देती।"

लड़की के लिए तो हर खर्च भारी लगता है, कहा जाता है—

चिड़कली रो खायो खेत और बेटी
रो खायो घर, कदी न ऊबरे

अगर मैं—
घी, दूध या अच्छे खाने की मांग करूं तो...
"क्या कोल्हू में चलेगी"
अच्छा पहनूं तो...
"कुंवारी ही नाते जाएगी"
पढ़ने की बात करूं तो...
"क्या अफसरनी बनेगी"
क्यों होता है ये सब? क्या इसलिए कि मैं पराई हूं?

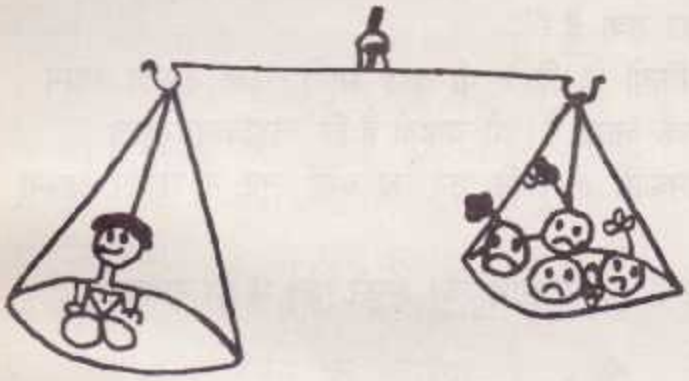

काकाजी भी मुझे खूब गालियां काढ़ते—"पढ़-लिख कर ये क्या निहाल करेगी।" मैं गुस्से में आकर उनकी पीठ पर कीड़ा छोड़ देती। मुझे गुस्सा भी खूब आता। कभी-कभी तो मैं मां से भी लड़ लेती। जैसे लक्खन तुममें हैं, वैसे ही मुझे भी दे रही है। सब उल्टे मुझे ही लड़ाका कहते। भाई पढ़ने जाते थे, मां उन्हें तो खूब धाप कर रोटी खिलाती और मुझे कम डालती। मां के खेत पर जाने के बाद मैं गुस्से में भाई को मारती। उसका गोडा फोड़ देती। दादी मुझे खेत पर रोटी और छाछ की मटकी ले जाने को देती। मैं मटकी फोड़ देती।"

संतोष के साथ जो कुछ हुआ
क्या सब के साथ वही होता है?
कई साथिनों ने बताया—छोरी पैदा होती है तो सुनने को मिलता है...

"राण्ड भाटा ही भाटा जण दिया"

क्या मैं सचमुच भाटा हूं? जब से होश संभाला, घर के हर काम में हाथ बटाती आयी हूं, पानी लाना, रोटी बनाना, कण्डे थापना, घर लीपना, खेत पर खाना देने जाना, बलीता लाना और ढोर-डंगर चराने जाना। हां... और जब मां मजूरी पर जाती तो घीसा और मूली को मैं ही खिलाती हूं।

थोड़ी और बड़ी हुई तो घर की आमदनी में भी हाथ बंटाने लगी। कभी गारा नाकने जाती तो कभी खेत पर। गलीचा बनाने के काम में तो खुद पैसे भी कमा के लाती।

"क्या मेरा मन कभी खेलने को नहीं करता? सुबह से शाम तक, बस काम में ही डूबी रहती। खेलने जाती तो सुनने को मिलता—इसके तो पैर ही नहीं टिकते। छोरी भी तो लुगाई जात ही है, ना उसके काम की पहचान ना हमारे।

क्या बेटी के साथ ऐसा करना ठीक है? क्या उस में जीव नहीं होता? पर लुगाइयां अपनी बेटी के साथ हो रहे भेदभाव को क्यों नहीं रोक पातीं? जो उन्होंने बचपन में खुद सहा है, उसे वो रिवाज़ मानती हैं। इस रिवाज़ को वो तोड़ने की बात सोच ही नहीं पातीं, इसलिए अपने बेटे-बेटियों में भेदभाव करती हैं।

किसी ने बचपन में हमारी कदर नहीं की, इसलिए हमने अपनी बेटियों की कदर भी नहीं जानी।

क्या ये भेद हमारे अंदर ऐसे रच-बस गया है, जैसे दूध में पानी, या कुछ बदल सकता है?

"हां, बदल सकता है।" माया किशनपुरा का कहना है—"साथिन बनने से पहले मैं अपने लड़के और लड़की में भेद करती थी। छोरी अगर मक्खन मांगती तो मैं कहती कि तू कौन-सा कमा कर लाएगी, बेटा तो कमाएगा। साथिन बनने के बाद मेरा सोच बदला—कि लड़का-लड़की बराबर है। अब लड़की को भी पढ़ने भेजती हूं और बराबर का खाने को देती हूं।"

ग्यारसीबाई का कहना है—"पढ़ाई-लिखाई से लड़कियां बिगड़ती नहीं हैं। उन्हें भी नई-नई बातों का पता लगना चाहिए। उनको भी अपने लिए जीने का हक है।"

साथिनों ने अपने सोच को बदला है। वो लड़कियों के लिये भी कुछ सपने, कुछ उम्मीद रखने लगी हैं। उनकी रोज़ की छोटी-छोटी बातों में थोड़ा फर्क आया है। वो चाहती हैं कि लड़कियां स्कूल जाएं, साइकिल चलाना सीखें, ज्यादा से ज्यादा जानकारी लें ताकि उन को कोई लूट न सके। अपना भला-बुरा खुद समझ सकें।

आज जब हम खुशी मनाने आए हैं तो अपनी बेटियों को भी साथ लें। अपने गांव में इन सवालों पर खुल कर बात करें:

क्यों हम लड़की को जिंदा रहने का ही अधिकार नहीं देना चाहते?

लड़की के जन्म पर क्यों दुख मनाते हैं?

क्यों लड़की पर ही सारे काम का बोझ डालकर उसका बचपन उस से छीन लेते हैं?

अपनी लड़कियों को आगे बढ़ने के समान मौके क्यों नहीं देते?

आपके खत के इन्तजार में

हम सब

अर्चना, ममता, संतोष, मंजू, बदाम,

आनन्दी, दिप्ता, गीता, सावित्री,

विद्या, ओमकंवर, सन्नी और भरत □